



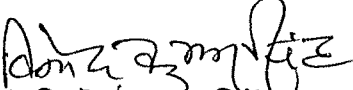
डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि आनन्द कुमार गुप्ता अनुसंधित्सु, ने हिन्दी विषय में शीर्षक "हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का अवदान" पर पी-एच०डी० उपाधि हेतु विश्वविद्यालय के नियमानुसार अपना शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है। पी-एच०डी० अनुसंधित्सु के रूप में किए गए अनुसंधान का प्रारूप इनके व्यक्तिगत अनुशीलन एवं परिश्रम पर आधारित है तथा पूर्ण रूप से मौलिक है।

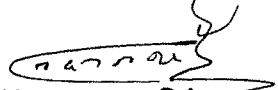
दिनांक :

सह शोध-निर्देशक

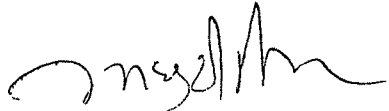

डॉ. विनोद कुमार सिंह

रीडर, हिन्दी विभाग,
तिलकधारी महाविद्यालय,
जौनपुर (उ.प्र.)

शोध-निर्देशक


डॉ. सदानन्द सिंह

रीडर, हिन्दी विभाग,
पं. कमलापति त्रिपाठी राजकीय महाविद्यालय
चन्दौली (उ.प्र.)



डॉ. (श्रीमती) माधुरी सिंह
रीडर व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
तिलकधारी महाविद्यालय,
जौनपुर (उ.प्र.)



(डॉ. उदय पाल सिंह)

प्राचार्य
तिलकधारी महाविद्यालय,
जौनपुर (उ.प्र.)

Principal
W.D. College
Jaunpur

भूमिका

हिन्दी-आलोचना आज एक स्वतंत्र और समृद्ध गद्य विद्या के रूप में स्वीकृत है। अन्य गद्यविधाओं की तरह 'आलोचना' का विकास भी आधुनिक काल में भारतेन्द्र युग से ही माना जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि भारतीय आचार्य काव्य-सौन्दर्य के विधायक तत्वों का निरूपण नहीं कर सके थे। वस्तुतः भारतीय आचार्यों ने काव्य के सौन्दर्य-विधायक तत्वों को लक्षित और परिभाषित करने के प्रयत्न में स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की थी। वे काव्यशास्त्र निर्माता थे। कवि-विशेष या कृति-विशेष के रचना-सौष्ठव के विश्लेषण में उनकी रुचि नहीं थी। वे काव्यशास्त्र निर्माता थे। कवि-विशेष या कृति-विशेष के रचना-सौष्ठव के विश्लेषण में उनकी रुचि नहीं थी। उन्होंने रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य और ध्वनि सिद्धान्तों की मीमांसा करते हुए काव्य के वाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य के आधारभूत तत्वों का स्वरूप निर्दिष्ट किया था। उनकी स्थापनायें आज भी प्रासंगिक हैं और हिन्दी आलोचना ने अपने विकास के प्रत्येक चरण में उनसे प्रेरणा और शक्ति ग्रहण की है। आधुनिक काल से हिन्दी-आलोचना का आरम्भ मानने का अर्थ यह है कि हिन्दी के साहित्य-मनीषियों में कवि-विशेष या कृति-विशेष का अध्ययन करते हुए स्वतंत्र रूप से प्रबन्ध या निबन्ध लिखने की शुरुआत आधुनिक काल में की है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ भारतेन्द्र से माना जाता है।

भारतेन्दु-युग में हिन्दी आलोचना का आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किन्तु आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण इस काल में नहीं मिलता। 'हिन्दी प्रदीप' (1877-1910) ही एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत आलोचनायें प्रकाशित करता था। पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षा के रूप में प्रकाशित होने वाली आलोचनाओं के अतिरिक्त इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं का अस्तित्व भी स्वीकार किया जा सकता है-

1. रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा में लिखित सैद्धान्तिक आलोचना।
2. ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली गद्य में लिखी गयी टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना।
3. इतिहास-ग्रन्थों में कवि परिचय के रूप में लिखी गयी आलोचना।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत विंगल, अलंकार, रस, नाटक तथा सम्पूर्ण काव्यशास्त्र- इन सभी विषयों पर लक्षण ग्रन्थों की रचना की गयी। उदाहरण स्वरूप ज्यादा स्वरूप कृत 'रुद्र पिंगल' (1969) उमराव सिंह कृत 'छन्दो महोदधि' (1878), जगन्नाथ प्रसादभानु कृत 'छन्दः प्रभाकर' (1894), और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत 'घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर' (1897) इस युग में रचित उल्लेखनीय पिंगल ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार लछिराम कृत 'रावणेश्वर कल्पतरु' (1892) तथा मुरारिदान कविराज कृत 'जसवन्त-जसो-भूषण' (1897) आलोच्य युग के महत्वपूर्ण अलंकार ग्रन्थ हैं। रस-ग्रन्थों में कृष्ण लाल कृत 'रस सिन्धुविलास' (1883), साहब प्रसाद सिंह कृत 'रस-रहस्य' (1887) और प्रताप नारायण कृत 'रस कुसुमाकर' (1894) उल्लेखनीय हैं। 'रस कुसुमाकर' में लक्षण स्वच्छ खड़ी बोली गद्य में दिये गये हैं। इस रस शास्त्र के स्पष्ट खड़ी बोली गद्य में दिये गये हैं। इस रसशास्त्र से स्पष्ट और सुबोध ज्ञान के लिए यह

ग्रन्थ महत्व का है। सम्पूर्ण काव्यशास्त्र को दृष्टि में रखकर लिखे गये लक्षण ग्रन्थों में जानकी प्रसाद का 'काव्य सुधाकर' (1886) उल्लेखनीय है। नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति भारतेन्दु का 'नाटक' (1883) है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन नाट्य शास्त्र की जानकारी कराने के साथ ही युग-प्रवृत्ति का ध्यान रखकर प्राचीन जटिल शास्त्रीय नियमों के छूट लेने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। इन लक्षण ग्रन्थों से दो महत्वपूर्ण बातें प्रकट होती हैं। एक तो ये इस बात के सूचक हैं कि किसी भी युग में शिक्षित जनता की मनोवृत्ति का प्रवाह समानान्तर कई धाराओं में हो सकता है- आलोच्य युग में एक ओर जहाँ पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक राष्ट्रीय हित एवं समाज-कल्याण को दृष्टि में रखकर पुस्तकों की समीक्षा की जा रही थी, वहीं दूसरी ओर रीतिकालीन मूल्यों में विश्वास करने वाले कुछ विद्वान् पिंगल, नायिका-भेद, रस निरूपण एवं अलंकार विवेचन में प्रवृत्त थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह लक्षित करने की है कि समाज को प्रभावित करने वाली कुछ विकृतियों का उल्लेख कर देने मात्र से काव्य-समीक्षा का स्तर ऊँचा नहीं उठता। जब तक शास्त्रीय सिद्धान्तों का पुनराख्यान करके उनकी कसौटी पर नवीन कृतियों की गम्भीर एवं मार्मिक परख नहीं की जाती तब तक शास्त्रीय सिद्धान्तों की पुरानी परम्परा अलग घिसटती रहती है और सामान्य समीक्षा का प्रवाह अलग चलता रहता है।

भारतेन्दु-युग में आधुनिक आलोचना का रूप यदि कहीं बीज-रूप में सुरक्षित है तो वह पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशिक पुस्तक-समीक्षाओं में ही है। इस क्रम में सबसे पहला उल्लेखनीय नाम बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' का है। उन्होंने श्रीनिवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' और गदाधर सिंह कृत 'बंग

विजेता' के अनुवाद की विस्तृत आलोचना 'आनन्द कादम्बिनी' में की थी। इसके बाद बालकृष्णा भट्ट और बाल मुकुन्द गुप्त ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। भट्ट जी की 'नील देवी', 'परीक्षा गुरु', 'संयोगिता स्वयंवर और 'एकान्तवासी योगी' आदि ग्रन्थों की आलोचनाएँ तत्कालीन समीक्षा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। बालयुग गुप्त द्वारा लिखित आलोचनाएँ भी परम्परा को आगे बढ़ाने वाली हैं, किन्तु उनका कृतित्व बहुत कुछ द्विवेदी की सीमा में आता है।

अतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युग में आधुनिक हिन्दी-आलोचना का सूत्रपात तो हो गया था, किन्तु तत्कालीन समीक्षकों ने न तो सूक्ष्म काव्य सौन्दर्य-विधा तत्वों को पहचानने की क्षमता थी और न रचना में निहित जीवन-मूल्यों को सौन्दर्य-तत्व से जोड़कर व्याख्यायित करने की शक्ति ही थी।

द्विवेदी युग में हिन्दी-आलोचना का गंभीर एवं तात्विक रूप तो नहीं निखरा, किन्तु उनकी कई महत्वपूर्ण पद्धति अवश्य विकसित हुईं। सामान्यतः इस युग में हिन्दी-आलोचना के पांच रूप लक्षित किये जा सकते हैं- शास्त्रीय आलोचना, अर्थात् लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में काव्यांग-विवेचन, तुलनात्मक मूल्यसांकन एवं निर्णय, अन्वेषण एवं अनुसंधानपरक आलोचना, परिचयात्मक आलोचना तथा व्याख्यात्मक आलोचना। संस्कृत-आचार्यों की पद्धति पर लक्षण ग्रन्थ प्रस्तुत करने की परम्परा रीति काल एक प्रमुख प्रवृत्ति थी। आलोच्य-युग में भी इस परम्परा में जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के 'काव्य प्रभाकर' (1910) तक 'छन्द सारावली' (1917) और लाला भगवान दीन ने 'अलंकार मंजूषा' (1916) की रचना की। 'भानु' जी ने भूमिका अंग्रेजी में लिखी है और हिन्दी के अनेक परिभाषा शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी दिये हैं। दीन जी ने अलंकार की समुचित

जानकारी कराने के उद्देश्य से ही इस ग्रन्थ की रचना की है। उन्होंने यथास्थान हिन्दी-अलंकारों के समकक्ष फारसी, अरबी और अंग्रेजी अलंकारों का भी उल्लेख किया है।

हिन्दी-साहित्य की वर्तमान स्थिति से भी डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी जी संतुष्ट नहीं हैं। युवा लेखन न कविता के क्षेत्र में उन्हें संतुष्ट कर सका है न गद्य-रचना के क्षेत्र में। यह अकारण नहीं है कि 'हिन्दी-साहित्य और संवेदना का विकास' का अंत उन्होंने आचार्य शुक्ल, प्रसाद, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त और प्रेमचन्द्र को याद करते हुए किया है। भाषा और अनुभूति के अद्वैत का सर्वजनात्मकता की चरम निष्पत्ति मानने वाले डॉ. चतुर्वेदी अपने विवेचन-क्रम में भाषिक विश्लेषण की सीमाओं में ही उलझकर नहीं रह जाते हैं। वे काव्य-भाषा के जटिल विकास-क्रम-संदर्भ-प्रतीक-भाव-चित्र (बिम्ब)-मितकथन-अमूर्तन को निरन्तर ध्यान में रखते हुए भाषिक वि्लेषण द्वारा रचना में निहित केन्द्रीय संदर्भ तक पहुंचने की पूरी कोशिश करते हैं। उन्होंने 'निराला', 'प्रसाद', 'अज्ञेय', 'मुक्तिबोध' की समीक्षा करते हुए उनकी काव्य-भाषा की विशेषताओं को निर्दिष्ट करने के साथ ही उनकी रचनाओं में अन्तर्निहित समकालीन राष्ट्रीय संदर्भों, व्यक्तिगत जीवन-संघर्षों, व्यापक मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक टकराहटों तथा सृजन की केन्द्रीय प्रेरक संवेदना को भी स्पष्ट किया है। यह अवश्य है कि सर्जनात्मक विकास की चरम निष्पत्ति को समीक्षा के केन्द्र में रखने के कारण डॉ. चतुर्वेदी की समीक्षा-भूमि कुछ संकुचित हो गयी है। समीक्षा भूमि का यह संकोच गद्य-रचनाओं के मूल्यांकन में साफ लक्षित होता है। चतुर्वेदी जी ने उपन्यास की समीक्षा में काव्य-भाषा की तरह कथा-भाषा का प्रश्न उठाया है। ये कहते हैं, "वर्णन की परंपरित स्थूल भाषा

और नयी कविता की अमूर्त और विरूपीकृत भाषा को एक रचना-विधान में कैसे संघटित किया जाय, जिससे दोनों के बीच न जोड़ दिखाई दे और न दरार ही, यही आधुनिक उपन्यास की मूल समस्या है।” इस प्रकार डॉ. चतुर्वेदी ने उपन्यास की समस्या को भाषा की समस्या का पर्याय मान लिया है और तब वे अनुभव करते हैं कि नये उपन्यासकारों में डॉ. देवराज, नरेश मेहता, लक्ष्मीकान्त वर्मा, प्रभाकर मावचे, रघुवंश, कृष्ण बलदेव बैद, विपिन कुमार अग्रवाल और गंगा प्रसाद विमल ने ही वर्णन की स्थूल भाषा से ऊपर उठने का प्रयत्न किया है। डॉ. चतुर्वेदी की कसौटी पर खरे उतरने वाले इन उपन्यासकारों में किसी को भी अन्य समीक्षकों ने श्रेष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में नहीं रखा है। वस्तुतः भाषा और अनुभूति का अद्वैत कविता में भले सध जाय, उपन्यास में उसको साधना कठिन है। उपन्यास में रचनाकार को अपनी संवेदना का इतना प्रसार करना पड़ता है कि वह पूरी समाज का एक संघटित संश्लिष्ट चित्र अनुभव की भाषा में प्रस्तुत कर सके। वर्णन की स्थूलता का अतिक्रमण ‘अज्ञेय’ के ‘नदी के द्वीप’ में किया गया है किन्तु इस अतिक्रमण ‘अज्ञेय’ के ‘नदी के द्वीप’ में किया गया है किन्तु इस अतिक्रमण का या यों कि भाषा और अनुभूति के अद्वैत को साधने की प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ है कि ‘नदी के द्वीप’ अपनी अद्वित्रीयता के बावजूद एक प्रणय-कथा बनकर रह गया है। कुछ भी हो भाषा और अनुभूति के अद्वैत के प्रतिमान के आधार पर नये साहित्य का मूल्यांकन करके डॉ. चतुर्वेदी ने नयी समीक्षा को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

डॉ. चतुर्वेदी जी ने ‘कविता यात्रा’, ‘नयी कविता एक साक्ष्य’, ‘हिन्दी नवलेखन’ तथा ‘हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास’ आदि कृतियों में

अन्य नये कविताओं का मूल्यांकन किया है। इस मूल्यांकन में उन्होंने नवलेखन के आधारभूत तत्वों- आधुनिकता, स्वचेतना, मानवीय, नियमबौद्धिकता, भाषिक सर्जनात्मकता आदि के अतिरिक्त अलग-अलग रचनाकारों की निजी विशेषताओं को भी रेखांकित किया है। उदाहरण के लिए- 'जीवन के कटुतम संघर्षों को लेकर उन्हें कविता में एकदम तरल बना सकना शमशेर बहादुर सिंह के काव्य-व्यक्तित्व की पहचान है।' 'इतिहास और संस्कृति की परतों में औसत भारतीय जीवन आज कितना पाखंडी हो गया है, इसको (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) उधार देना चाहता है।' 'मनुष्य जीवन की नियति को उसके समूचे विस्तार में देखना और प्रासंगिक बनाए रखना रघुवीर सहाय के कवि कर्म का केन्द्रीय तत्त्व है।' मानवीय नियति की सार्थकता का प्रश्न बड़े संगत भाव के कुँवर नारायण ने 'आत्मजयी' में उठाया है। 'अन्धा युग बनाम आस्था' पूरी रचना (भारती के अंधा युग) का संघर्ष यही है। 'अंधेरे की शक्तियों से जूझने का उपक्रम अपने-अपने ढंग से निराला में है, मुक्तिबोध में है, भारती में है।' केदारनाथ सिंह काव्य-विकास के अपने हर दौर में वस्तु के स्तर पर जमीन से जुड़े रहे हैं और विधान के स्तर पर 'बिम्ब' से। तीखेपन और व्यंग्य विद्रूप से रचने की क्षमता श्रीकान्त वर्मा की विशेषता है। 'मानवीय प्रणय और सामाजिक इतिहास की शक्तियाँ तथा उनकी अन्तर्क्रिया को सूफी संतों जैसी सांकेतिक रहस्य और शैली में व्यक्त करना विजय देव नारायण साही की विशेषता है। साधारण जन और साधारण प्रकृति का साहचर्य केदारनाथ अग्रवाल की काव्य क्षमता का मुख्य स्रोत है। डॉ. चतुर्वेदी जी द्वारा अलग-अलग कवियों का यह वैशिष्ट्य-निदर्शन आचार्य शुक्ल की याद दिलाता है।

हिन्दी के नये समीक्षकों में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी मुख्यतः काव्यभाषा को केन्द्र में रखकर समीक्षा-कर्म में प्रवृत्त हुए हैं। चतुर्वेदी जी की दृष्टि में अनुभूति और भाषा एक है। इनके शब्दों में, 'अनुभव का अनुभव यानि कि अनुभूति या कि भाषा है।' आगे लिखते हैं, 'भाषा अपने में एक ऐसी प्रक्रिया है, जहाँ परम्परा, परिवेश और अस्तित्व, विचार और अनुभव जो काव्य-रचना करते समय उसे सृजनात्मक बनाता है।' भाषा का सृजनात्मक स्तर बिम्ब विधान की स्थिति में सर्वाधिक विकसित होता है। बिम्ब के अर्थ के कई स्तर संश्लिष्ट हो जाते हैं। जीवन के मूल सन्दर्भ काव्य में पहले प्रतीक बनकर आते हैं और उसके बाद बिम्ब का रूप ले लेते हैं। प्रतीकों का भाव-चित्र या बिम्ब के रूप में संघटित करना कवि की सर्जनात्मक दक्षता पर निर्भर है। सफल बिम्ब रचना न होने पर प्रतीक, कथानक रूढ़ि बन जाते हैं और अपनी सर्जनात्मक क्षमता खो देते हैं। डॉ. चतुर्वेदी जी उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि, 'चक्रव्युह' महाभारत का एक विशिष्ट सन्दर्भ है। बहुत समय तक चक्रव्युह शब्द के साथ महाभारत का पूरा परिवेश गर्भवती सुभद्रा को व्युह रचना की जटिलता समझाना गर्भस्थ शिशु के रूप में अभिमन्यु का उसे सुनना आदि जुड़ा हुआ था। कालान्तर में यह शब्द एक प्रतीक बन गया और इससे मानसिक उलझनों में घिर जाने का अर्थ लिया जाने लगा। इसके बाद नयी कविता में चक्रव्युह जब भाव-चित्र या बिम्ब के रूप में संक्रमित हुआ, तो इसका बिम्बार्थ हुआ, 'मृत्यु के भय से युद्ध करता हुआ आधुनिक व्यक्ति-मन' यहाँ आकर महाभारत के मूल सन्दर्भ से अलग कवि ने स्वयं एक अपना परिवेश निर्मित कर लिया। इस प्रकार सर्जनात्मक काव्य-भाषा के विकास का चक्र पूरा हो गया। प्रतीकार्थ काव्य-भाषा के विकास का एक स्तर है।

इससे अधिक विकसित स्तर बिम्ब-विधान का है। यह कई अर्थों के संश्लेषण को सघन भाव-चित्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। इसका कोई एक सीमित, निर्दृष्ट, पूर्व-स्वीकृत और स्थिर अर्थ नहीं होता। चाक्षुष संवेदना बाह्य रूपाकार की प्रतीति करना है, जबकि सफल बिम्ब आन्तरिक भाव स्थितियों को भी व्यंजित करता है। चतुर्वेदी जी के अनुसार, 'चाक्षुष-पक्ष यानि कि एक दृश्य-प्रतिमा का निर्माण कर सकना, वस्तुतः बिम्ब-विधान का एक प्राथमिक और गौड़ स्तर है।' मुख्य बात यह है कि संश्लिष्ट गठन होने के कारण बिम्ब में उसके विभिन्न तत्वों के बीच सम्पर्क और टकराहट से एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया परिचालित होती है, जो अर्थ को विकसनशील बनाती है। इस तरह बिम्ब प्रधानतः और अनिवार्यतः एक अर्थ संश्लेष है और इसलिए रचना में काव्य-भाषा या कि काव्य बनने की मुख्य प्रक्रिया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध "हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का अवदान" के प्रथम अध्याय 'हिन्दी समीक्षा' के अन्तर्गत हिन्दी समीक्षा की उत्पत्ति, हिन्दी समीक्षा का इतिहास तथा हिन्दी समीक्षा का उद्भव एवं विकास की विस्तृत विवेचना किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'हिन्दी समीक्षा का स्वरूप' में सैद्धान्तिक समीक्षा, व्यावहारिक समीक्षा, व्याख्यात्मक समीक्षा, ऐतिहासिक समीक्षा, तुलनात्मक समीक्षा, मनोवैज्ञानिक समीक्षा और मार्क्सवादी समीक्षा को अवलोकित किया गया है।

तृतीय अध्याय 'हिन्द समीक्षा का विकासक्रम' में हिन्दी समीक्षा की भूमिका, भारतेन्दुकालीन हिन्दी समीक्षा, द्विवेदीकालीन हिन्दी समीक्षा, शुक्लकालीन हिन्दी समीक्षा का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'समकालीन हिन्दी समीक्षा' के अन्तर्गत छायावादी हिन्दी समीक्षा, प्रगतिवादी हिन्दी समीक्षा, शास्त्रीय समीक्षा, अनुसंधान समीक्षा, नवीन समीक्षा, मिथकीय समीक्षा और शैली वैज्ञानिक समीक्षा को प्रस्तुत किया गया है।

पंचम् अध्याय 'डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में जन्म, शिक्षा, विकास-यात्रा, अध्यापक, सम्पादक एवं समीक्षक के रूप में डॉ. चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व को अलंकृत किया गया है।

षष्ठ अध्याय 'डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का शिल्प-विधान' के अन्तर्गत चतुर्वेदी जी की भाषा, संवेदना का शिल्प-विधान, अलंकार-विधान एवं शैली विन्यास को दर्शाया गया है।

सप्तम् अध्याय 'उपसंहार' के अन्तर्गत सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध के सारतत्व को संक्षिप्त रूप से प्रकाशित करते हुए निष्कर्ष दिया गया है और अन्त में विस्तृत सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची है, जिन ग्रन्थों की सहायता से शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में सरलता हुई है।



आभारोक्ति

‘सत्गुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार’ - सूक्ति के अनुसार - गुरु का स्थान सर्वोपरि है, इसलिए सर्वप्रथम इस पुनीत कार्य के लिए प्रेरणा-स्रोत शोध-निर्देशक डॉ. सदानन्द सिंह, रीडर, हिन्दी विभाग, पं. कमलापति त्रिपाठी राजकीय महाविद्यालय, चन्दौली (उ.प्र.), इनके विषय में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा, जो ज्ञान मुझे इनके द्वारा प्राप्त हुआ इसके लिए मैं इनका आजीवन ऋणी रहूँगा।

मैं अपने सह-शोध-निर्देशक डॉ. विनोद कुमार सिंह, रीडर, हिन्दी विभाग एवं डॉ. (श्रीमती) माधुरी सिंह, विभागाध्यक्ष-हिन्दी विभाग एवं डॉ. उदयपाल सिंह, प्राचार्य, तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर (उ०प्र०) की स्निग्ध शीतल छत्रछाया में सुगमतापूर्ण ढंग से शोध-कार्य को पूरा कर सका, ऐसे परमादरणीय गुरुजन का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं आभारी हूँ डॉ. हरिप्रकाश शर्मा, प्राचार्य, सोनपति महिला महाविद्यालय, महाराजगंज (उ.प्र.) का, जिनकी प्रेरणा के द्वारा मैं इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में सफल हो सका। इन्होंने समय-समय पर उचित परामर्श एवं पुस्तकों को उपलब्ध कराया, जिससे यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की पूर्णाहृति पर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ ईश्वर को सत्-सत् नमन् करते हुए पूज्यनीय दादा जी रामचन्द्र गुप्ता को सादर समर्पित करता हूँ, जिनके द्वारा दी गयी प्रेरणा ही इस श्रमसाध्य कार्य में मेरा पाथेय बनी। पूज्यनीय पिता श्री रामप्रीत गुप्ता जी एवं माता श्रीमती कलावती देवी, जिनके स्नेहपूर्ण संस्कारों को हृदयंगम करके ही मैं जीवन-पथ

पर अग्रसर हूँ। आपके आशीर्वाद की शक्ति से ही मैं इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में सफल हुआ हूँ।

मैं अपनी बहन श्रीमती मालती देवी एवं बहनोई श्री राजेश कुमार गुप्ता का आभारी हूँ, जिनके आशीर्वाद से यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका। मैं अपनी पत्नी श्रीमती साधना गुप्ता का भी आभारी हूँ, जिन्होंने समस्त जिम्मेदारी अपने हाथों में लेकर मुझे गृह-कार्यों से मुक्त रखा, इनके सहयोग एवं प्रेम से ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हो सका। अपनी पुत्री कु. आर्या (खुशी) के उस शिशु भाव का मैं आभारी हूँ, जो श्रम के कारण आयी थकान को अपनी चंचल वाक्पटुता से दूर कर देती थी। मैं ईश्वर से इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

मैं उन विद्वज्जनों के प्रति श्रद्धापूर्वक आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी महान् कृतियों के सहयोग से मेरा शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका। इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में विवेकानन्द केन्द्रीय विश्वविद्यालय, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग एवं नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक शोध सामग्री उपलब्ध करायी।

शोध-प्रबन्ध कलात्मक रूप में प्रस्तुत हो, यह किसी भी शोधार्थी की इच्छा रहती है। इस सुकार्य हेतु मैं अस्थाना कम्प्यूटर्स, टी.डी. कालेज रोड, हुसेनाबाद, जौनपुर (कम्प्यूटर टाइपिंग तथा लेजर सेटिंग में कुशल) टाइपिस्ट श्री हेमन्त कुमार अस्थाना जी जिन्होंने सुरुचि पूर्वक कार्य में पूरी दिलचस्पी

लेते हुए अपने स्पष्ट टंकण के द्वारा इस शोध-प्रबन्ध को विद्वत्जन के बीच जाने योग्य बनाया है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

अन्ततः, प्रस्तुत प्रबन्ध में अज्ञानतावश आयी किसी भी त्रुटि हेतु पुरोधियों से क्षमा प्रार्थी हूँ, क्योंकि कोई भी कृति अपने में पूर्ण नहीं होती, इसलिए जो भी है, जैसा भी है आपके सम्मुख प्रस्तुत है। अपने श्रेष्ठजनों के द्वारा दिये गये आदर्शों का अक्षरशः पालन करने की मैं शपथ लेता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसे-

“जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्वकीन करतार,
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार!!”

की भाँति ही हृदयंगम करेंगे।

इति शुभम्!

आनन्दकुमार गुप्ता
आनन्द कुमार गुप्ता
शोधार्थी